खत्री और अन्य

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(Khatri and Others

v.

State of Bihar and Others)

(10 मार्च, 1981)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती और बहरुल इस्लाम)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 162 (सपठित धारा 172)—लागू होना—किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किए गए अन्वेषण के दौरान उसके समक्ष साक्ष्य के रूप में, किए गए कथन के या उक्त अधिकारी द्वारा तैयार की गई केस डायरी के पेश किए जाने या उसके उपयोग पर जो वर्जन है, वह वहां लागू नहीं होगा जहां कि न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 या 226 के अधीन वाली कार्यवाही या किसी सिविल कार्यवाही में ऐसे कथन या केस डायरी को पेश करने का निदेश देता है—परन्तु यह बात तभी होगी जबकि उक्त कथन या केस डायरी भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन अन्यथा सुसंगत हो।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 35—लोक अभिलेख की सुसंगति—जब कोई लोक सेवक अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में विवाद्य तथ्य से सम्बन्धित ऐसी कोई रिपोर्ट जो शासकीय अभिलेख का अंग है, सरकार को प्रस्तुत करता है तो वह धारा 35 के अधीन सुसंगत दस्तावेज होती है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 और 226 (सपठित अनुच्छेद 227)—विचाराधीन कैदियों द्वारा इस आधार पर रिट पिटीशन फाइल किया जाना कि पुलिस अधिकारियों ने उन्हें अन्धा बनाकर संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत उनके प्राण के संरक्षण के मूल अधिकार का अतिक्रमण किया है—न्यायालय

1981(3) eILR(PAT) SC 1

द्वारा यह जांच की जानी कि क्या वास्तव में पुलिस अधिकारियों ने ऐसा किया था—यदि वह ऐसी जांच करता है, तो किसी विशिष्ट पुलिस अधिकारी को दण्डित करने की दृष्टि से उसके अपराध के विषय में न्यायनिर्णयन करने के प्रयोजन से ऐसा नहीं करता, बल्कि यह विनिश्चित करने के लिए ऐसा करता है कि क्या पिटीशनरों के मूल अधिकार का अतिक्रमण किया गया है और यदि ऐसा है, तो राज्य किस सीमा तक उन्हें प्रतिकर देने के दायित्वाधीन है।

पिटीशनर बिहार राज्य के हैं। राज्य सरकार ने उन्हें विचाराधीन कैदी के रूप में कारागार में रखा था। उससे व्यथित होकर उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में यह अभिकथित करते हुए रिट पिटीशन फाइल किया कि राज्य के पुलिस बल ने पुलिस पदधारियों के रूप में कार्य करते हुए उन्हें अन्धा बना दिया है; इस कारण संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन गारण्टीकृत प्राण के संरक्षण के उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण हुआ है। चूंकि उनके उक्त मूल अधिकार का अतिक्रमण हुआ है, इसलिए राज्य सरकार उन्हें प्रतिकर देने के दायित्वाधीन है। अतः राज्य सरकार ने पुलिस अधिनियम की धारा 3 के अधीन पुलिस उप-महानिरीक्षक और अन्य सम्बद्ध अधिकारियों को निदेश दिया कि वे इस मामले की जांच करें। उक्त पुलिस अधिकारी ने अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में मामले की जांच की और उस सम्बन्ध में राज्य सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत की। न्यायालय ने रिट पिटीशनों की सुनवाई करते हुए उक्त अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की तथा अधिकारी द्वारा किए गए सम्बद्ध पत्राचार तथा टिप्पण आदि की प्रतियां प्रस्तुत करने का निदेश दिया। राज्य सरकार ने उन दस्तावेजों को पेश करने की बात पर इस आधार पर आक्षेप किया कि उन दस्तावेजों को दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162 और 172 के अधीन संरक्षा प्राप्त है और इसी कारण पिटीशनर उन दस्तावेजों को देखने या इन कार्यवाहियों में उनका उपयोग करने के हकदार नहीं हैं। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने राज्य के उक्त अभिवाक् को अस्वीकार करते हुए,

अभिनिर्धारित—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162 पुलिस अधिकारी के समक्ष किए गए बयान के इस्तेमाल पर रोक लगाती है जो अध्याय 12 के अधीन अन्वेषण के अधीन दिया गया हो चाहे इसे पुलिस डायरी में अभिलिखित किया गया हो या अन्यत्र, किन्तु धारा की शब्दावली से यह स्पष्ट है कि यह रोक केवल उन्हीं मामलों में लागू हो सकती है जहां ऐसे बयानों का उपयोग किसी ऐसे अपराध की जांच या विचारण के लिए

1981(3) eILR(PAT) SC 1

किया जाना हो तो बयान के समय अन्वेषणाधीन हो। यदि अध्याय 12 के अधीन अन्वेषण के दौरान किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष बयान लिया गया हो और उसका उपयोग किसी जांच या विचारण से भिन्न किसी अन्य प्रक्रिया के लिए किया जाना है जो ऐसे अपराध से भिन्न है जो बयान देने के समय अन्वेषणाधीन था तो ऐसी दशा में धारा 162 के अधीन लगाई गई रोक का सहारा नहीं लिया जा सकता। अन्वेषण के दौरान पुलिस के समक्ष दिए गए बयान से अभियुक्त व्यक्ति को सुरक्षा दी जाती है जिसके लिए यह उपबन्धित किया गया है कि ऐसे बयान का उपयोग अपराध की किसी ऐसी जांच या किसी ऐसे विचारण में धारा के परन्तुक में बताए गए प्रयोजनों से भिन्न अन्यत्र न किया जाए जो ऐसा बयान देते समय अन्वेषणाधीन था। किन्तु यह सुरक्षा किसी अन्वेषणाधीन अपराध से भिन्न जिसकी बाबत जांच या विचारण चल रहा है, किसी अन्य मामले में उपयोगी नहीं है और इसलिए इस धारा द्वारा लगाई गई रोक सीमित रोक है। उदाहरण के लिए, किसी सिविल मामले की कार्यवाही में या संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के अधीन चल रही कार्यवाहियों में लागू नहीं होती और अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारियों के समक्ष दिए गए बयान को इन कार्यवाहियों में साक्ष्य के तौर पर उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इसका उपयोग ऐसी दशा में ही किया जा सकता है यदि वह अन्यथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन सुसंगत हो। वर्तमान कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किया गया रिट पिटीशन है जिसमें पिटीशनरों ने अनुच्छेद 21 के अधीन अपने मूल अधिकारों के प्रवर्तन की मांग की है। इसलिए यह किसी अपराध की बाबत की जाने वाली न कोई 'जांच' है और न ही कोई 'विचारण'। इसलिए यह दर्शित करना बहुत कठिन लगता है कि राज्य सरकार वर्तमान मामले में किस प्रकार धारा 162 का आश्रय लेना चाहती है। यह भी सर्वविदित है कि अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए किसी रिट पिटीशन में साक्ष्य के रूप में अन्वेषण के दौरान किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष दिए गए बयान को भी इस शर्त के अधीन उपयोग किया जा सकता है कि वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन सुसंगत है और ऐसे बयान को प्रस्तुत करने या उसका उपयोग करने के विरुद्ध धारा 162 कोई रोक नहीं लगा सकती। (पैरा 3)

धारा 172 के अधीन विचार के लिए जो पहला प्रश्न सामने आता है वह यह है कि क्या श्री उप-महानिरीक्षक और उनके सहायकों द्वारा अन्वेषण करने के परिणामस्वरूप जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है वह इस धारा के अर्थान्तर्गत केस डायरी का भाग है या नहीं। हम यहां यह ठीक नहीं समझते

कि इस प्रश्न की गहराई में लाएं और इस प्रयोजन के लिए हम राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल द्वारा प्रस्तुत विचारों को ही पर्याप्त समझते हैं। इन दोनों ही प्रश्नों के सम्बन्ध में उनका यह निवेदन ठीक लगता है और अन्वेषण के परिणामों को अधिकथित करने वाली उप-महानिरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट केस डायरी का ही एक भाग है और इसलिए धारा 172 उस पर लागू होती है। किन्तु ऐसा होने के बावजूद भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि ये रिपोर्टें धारा 172 के अधीन प्रकट किए जाने से प्रतिबंधित हैं और इसके लिए इस धारा की शब्दावली पर विचार करना आवश्यक होगा। (पैरा 4)

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 172 की उपधारा (3) के आधार पर दाण्डिक न्यायालय को निर्दिष्ट केस डायरी के सम्बन्ध में न तो अभियुक्त को और न ही उसके अभिकर्ताओं को यह हक है कि वे ऐसी डायरी की मांग करें और न ही उन्हें यह डायरी देखने का ही हक प्राप्त है। इसके बावजूद भी यदि ऐसा पुलिस अधिकारी जिसने वह डायरी तैयार की है, अपनी याददाश्त को ताजा करने के लिए उसका प्रयोग करता है अथवा यदि दाण्डिक न्यायालय जांच या विचारण के दौरान ऐसे अधिकारी की बातों का खण्डन करने के लिए उसका प्रयोग करता है वहां, यथास्थिति, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 161 या धारा 145 के उपबन्ध लागू होंगे और अभियुक्त केस डायरी में केवल उसी प्रविष्टि को देखने का हकदार होगा जो इन्हीं दोनों प्रयोजनों में से किसी के लिए निर्दिष्ट की गई है और डायरी का केवल वही भाग जो कि न्यायालय की राय में इस प्रकार उपयोग में लाई गई किसी प्रविष्टि को पूरी तरह से समझने के लिए आवश्यक है उसे दर्शित किया जा सकेगा। संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए वर्तमान रिट पिटीशन में यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो गई है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत मूल अधिकारों को प्रवृत्त करने के लिए लाए गए इस रिट पिटीशन की प्रक्रिया न ही किसी अपराध से सम्बन्धित 'जांच' है और न ही 'विचारण' और न ही इस रिट पिटीशन की सुनवाई करने वाला न्यायालय दाण्डिक न्यायालय है और न ही पिटीशनर या उनके अभिकर्ता जहां तक उनके अन्धे किए जाने का प्रश्न है, किसी अपराध के अभियुक्त हैं इसलिए उप-महानिरीक्षक द्वारा अन्वेषण के परिणामस्वरूप प्रस्तुत की गई रिपोर्ट केस डायरी का एक भाग ही क्यों न हो, फिर भी हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए

गए इस रिट पिटीशन के सम्बन्ध में उसे धारा 172 के अधीन प्रस्तुत किए जाने और उसका उपयोग किए जाने से कैसे रोका जा सकता है। (पैरा 5)

यह बात स्पष्ट है कि वर्तमान रिट पिटीशन में उच्चतम न्यायालय के समक्ष हो रही जांच में विवादगत तथ्य यह है कि क्या पिटीशनरों को पुलिस दल के सदस्यों द्वारा गिरफ्तारी के समय या पुलिस अभिरक्षा के दौरान अन्धा बनाया गया था। पुलिस उप-महानिरीक्षक ने अपने सहयोगियों के माध्यम से मामले का अन्वेषण कार्य पूरा किया था और राज्य सरकार द्वारा अपनी पदीय हैसियत में सौंपे गए इस कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इन रिपोर्टों का इन्हीं विवाद्यकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है कि विचारणाधीन कैदियों को किस रीति से और किन व्यक्तियों द्वारा अंधा किया गया था और इसी बात का अन्वेषण करने का निदेश राज्य सरकार ने उक्त पुलिस अधिकारी को दिया था और यदि ऐसी बात है, तो यह समझना कठिन लगता है कि किस प्रकार राज्य सरकार इन रिपोर्टों को वर्तमान मामले में प्रस्तुत करने और साक्ष्य के रूप में उपयोग करने से रोक सकती है। ये रिपोर्टें सरकारी अभिलेख का एक भाग हैं और वे विवादगत तथ्य से इस दृष्टि से सम्बन्धित हैं कि किस प्रकार और किसके द्वारा 24 विचारणाधीन कैदियों को अन्धा बनाया गया था और यह मान लिया गया है कि ये रिपोर्टें श्री एल० वी० सिंह द्वारा, जो लोक सेवक हैं, अपने पदीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए तैयार की गई हैं और इस प्रकार वे स्पष्टतः और निस्सन्देह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 के अधीन आती हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि पुलिस उप-महानिरीक्षक और उनके सहयोगियों द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट जिसमें अन्वेषण के परिणाम अधिकथित किए गए हैं, स्पष्टतः धारा 35 के अधीन सुसंगत है क्योंकि वे विवादगत तथ्य से सम्बन्धित हैं और लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में एक तैयार की गई है। राज्य सरकार के विरुद्ध किए गए पिटीशन में जिसमें यह शिकायत की गई है कि राज्य सरकार के पुलिस अधिकारियों ने पिटीशनरों को गिरफ्तारी के समय अथवा पुलिस अभिरक्षा के दौरान अन्धा बना दिया था, राज्य सरकार इस शिकायत की सत्यता या असत्यता से सम्बन्धित रिपोर्ट को जो राज्य सरकार के निर्देश से पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा तैयार की गई है, प्रस्तुत करने से कैसे इनकार कर सकती है। न्यायालय का यह स्पष्ट मत है कि पुलिस उप-महानिरीक्षक और उनके सहयोगियों द्वारा किए गए अन्वेषण के परिणामस्वरूप तैयार की गई रिपोर्टें धारा 35 के अधीन सुसंगत हैं और वर्तमान रिट पिटीशन के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा उन्हें

प्रस्तुत किया जाना चाहिए और वे साक्ष्य के लिए उपयोग की जा सकती हैं। वस्तुतः इन रिपोर्टों में अन्तर्विष्ट कथनों को साक्ष्य में कितना महत्व दिया जाए यह ऐसा मामला है जिसका विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा इन रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् ही किया जा सकता है। हो सकता है कि अन्ततः यह पता चले कि इन रिपोर्टों का साक्ष्य से सम्बन्धित कोई विशेष महत्व नहीं है और यह भी हो सकता है कि इनमें राज्य सरकार के विरुद्ध कोई कथन भी अन्तर्विष्ट हो ऐसी दशा में यह भी सम्भव है कि राज्य सरकार उनकी सत्यता पर आपत्ति करे या उसका स्पष्टीकरण दे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये रिपोर्टें सुसंगत नहीं हैं। इसलिए राज्य सरकार को ये रिपोर्टें प्रस्तुत करनी चाहिएं और वर्तमान रिट पिटीशन में उन्हें अभिलेख पर लाया जाना चाहिए। (पैरा 9)

जब रिट पिटीशन पर विचार करने वाला न्यायालय ही इस मुद्दे की जांच करने की कार्यवाही आरम्भ करता है कि पिटीशनरों को पुलिस अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी के समय अथवा पुलिस अभिरक्षा के दौरान अंधा बनाया गया था अथवा नहीं तो उस समय यह कार्य किसी अधिकारी विशेष के दोष के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन को लेकर इस दृष्टि से नहीं किया जाता कि उसे दण्डित किया जाए अपितु इस प्रयोजन के लिए किया जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन पिटीशनरों के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है अथवा नहीं और ऐसे उल्लंघन के लिए राज्य प्रतिकर का संदाय करने के लिए उत्तरदायी है अथवा नहीं। इस प्रकार की जांच की प्रकृति और उसका उद्देश्य किसी दाण्डिक मामले की जांच की प्रकृति और उद्देश्य से बिल्कुल भिन्न होता है और इस मुद्दे पर रिट पिटीशन के सम्बन्ध में किए गए किसी विनिश्चय का किसी ऐसी दाण्डिक कार्यवाही में कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं होता जो किसी विशेष पुलिस अधिकारी के विरुद्ध की जानी है। इस प्रकार की स्थिति बहुधा उस समय उत्पन्न होती है जब किसी मोटरयान के चालक की असावधानी से की गई किसी दुर्घटना के बदले प्रतिकर का दावा किसी सिविल न्यायालय या अधिकरण में किया जाता है और ऐसी कार्यवाही में दावेदार को प्रतिकर देने के प्रयोजन के लिए न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना होता है कि मोटरयान के चालक ने मोटरयान चलाते समय असावधानी बरती है या नहीं भले ही ऐसे चालक के विरुद्ध तेज रफ्तार और असावधानीपूर्वक यान चलाने के सम्बन्ध में कोई दाण्डिक वाद लम्बित ही क्यों न हो। ऐसे न्यायालय के विरुद्ध जो किसी सिविल कार्यवाही या रिट पिटीशन पर विचारण कर रहा है, किसी दाण्डिक कार्यवाही के लम्बित होने

1981(3) eILR(PAT) SC 1

को उसके विरुद्ध निषेध नहीं माना जा सकता भले ही दोनों में समान विवाद्यक अन्तर्वलित क्यों न हो। दोनों हो प्रकार की कार्यवाहियां बिल्कुल अलग-अलग हैं और वे एक दूसरे को वर्जित नहीं कर सकतीं। ऐसा हो सकता है कि किसी दिए गए मामले में यदि अन्वेषण का कार्य अभी भी चल रहा हो वहां न्यायालय अपने समक्ष चल रही जांच को तब तक के लिए रोक सकता है जब तक अन्वेषण पूरा नहीं हो जाता अथवा यदि न्यायालय न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक समझे तो वह उस मामले की जांच को तब तक के लिए स्थगित भी कर सकता है जब तक कि ऐसे अन्वेषण के परिणामस्वरूप किया जाने वाला अभियोजन समाप्त नहीं हो जाता किन्तु यह ऐसा विषय है जो पूर्णत: न्यायालय के स्वनिर्णय के अधिकार पर ही निर्भर है और इस तरह का कोई वर्जन नहीं है जिससे कि न्यायालय को अपने समक्ष चल रही किसी जांच की कार्यवाही से मात्र इसलिए रोक दे कि अन्वेषण या अभियोजन अभी चल रहा है। (पैरा 8)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1975]	[1975] 1 उम० नि० प० 925=(1975) 3 एस० सी० सी० 646 : **कंवर लाल गुप्ता बनाम अमर नाथ चावला** (Kanwar Lal Gupta *v.* Amar Nath Chawla);	9
[1972]	[1972] 1 उम० नि० प० नि० सा० 99=[1972] 2 एस० सी० आर० 646 : **पी० सी० पी० रेड्डियार बनाम एस० पेरूमल** (P. C. P. Reddiar *v.* S. Perumal);	9
[1959]	[1959] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 875 : **तहसीलदार सिंह और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (Tehsildar Singh and Another *v.* State of Uttar Pradesh);	3
[1940]	ए० आई० आर० 1940 इलाहाबाद 291 : **एम्परर बनाम आफताब मोहम्मद खां** (Emperor *v.* Aftab Mohd. Khan).	3

1981(3) eILR(PAT) SC 1

अनुमोदित निर्णय

[1967]	ए० आई० आर० 1967 कलकत्ता 191 : लाइयोनैल एडवरीज लिमिटेड बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (Lionell Edweries Limited *v.* State of West Bengal);	9
[1964]	ए० आई० आर० 1964 आन्ध्र प्रदेश 198 : मालाकलया सूर्यराव बनाम जनकम्मा (Malakalya Surya Rao *v.* Janakamma);	3
[1952]	ए० आई० आर० 1952 नागपुर 271 : चन्दूलाल बनाम पुष्कर राय (Chaudulal *v.* Pushkar Rai);	9
[1945]	ए० आई० आर० 1945 नागपुर 1 : बली राम टीकाराम मराठे बनाम एम्परर (Bali Ram Tikaram Marathe *v.* Emperor);	3
[1927]	ए० आई० आर० 1927 अवध 323 : जगदत्त बनाम शिवपाल (Jagdat *v.* Sheopal).	9

निर्दिष्ट निर्णय

[1981]	[1981] 3 उम० नि० प० 256=[1980] 2 एस० सी० आर० 16 : बिहार राज्य बनाम जे० ए० सी० सलदाना (State of Bihar *v.* J. A. C. Saldana);	4
[1974]	(1974) 418 यू० एस० 683=14 लाइयर्स एडीशन (सैकेंड सीरीज) 1039 : यूनाइटेड स्टेट्स बनाम निक्सन (United States *v.* Nixon);	6
[1897]	आई० एल० आर० (1897) 19 इलाहाबाद 390 : क्वीन एम्प्रेस बनाम मन्नू (Queen Empress *v.* Mannu).	5

1981(3) eILR(PAT) SC 1

मूल अधिकारिता : 1980 का रिट पिटीशन संख्या 5670 और 6216.

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किए गए रिट पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से	श्रीमती के० हिंगोरानी और सर्वश्री हिंगोरानी, मुकुल मुदगल और दामोदर प्रकाश
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री के० जी० भगत और डी० गोवर्धन
भारत संघ की ओर से	कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश दिया ।

हमारे पास विचार के लिए जो प्रश्न रखा गया है वह यह है कि इस न्यायालय द्वारा 16 फरवरी, 1981 को किए गए आदेश के माध्यम से जिन दस्तावेजों को मंगाया गया था क्या राज्य सरकार उन्हें प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी है अथवा विधि के किन्हीं उपबन्धों के अधीन उन्हें प्रस्तुत किया जाना वर्जित है । 16 फरवरी, 1981 वाले आदेश द्वारा मंगाए गए दस्तावेज निम्नलिखित हैं—

1. श्री एल० वी० सिंह, उप-महानिरीक्षक, गुप्तचर (डकैती निवारण) द्वारा 9 दिसम्बर, 1981 को प्रस्तुत की गई गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट;

2. श्री एल० वी० सिंह और उनके सहयोगियों द्वारा 10 जनवरी, 1981 से 20 जनवरी, 1981 के बीच समस्त 24 मामलों के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गई गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट;

3. श्री एल० वी० सिंह द्वारा पुलिस महा-निरीक्षक को 3 जनवरी, 1981 को लिखा गया पत्र संख्या 4/आर और 7 जनवरी, 1981 को लिखा गया पत्र संख्या 20/आर;

4. अन्धे बनाए गए व्यक्तियों के सम्बन्ध में श्री एल० वी० सिंह, उप-महानिरीक्षक और श्री एम० के० झा, अतिरिक्त पुलिस महानिरीक्षक के बीच गुप्तचर विभाग द्वारा की जा रही जांच से सम्बन्धित पत्र व्यवहार और टिप्पणों से सम्बन्धित फाइलें;

5. वह फाइल (जो इस समय पुलिस महानिरीक्षक एस० के० चटर्जी के कार्यालय में हैं) जिसमें निरीक्षक और उप-निरीक्षक, गुप्तचर

विभाग द्वारा गजेन्द्र नारायण, उप-पुलिस महा-निरीक्षक, भागलपुर को तारीख 18 जुलाई या उसके आसपास प्रस्तुत की गई रिपोर्ट गई है और जिसमें श्री के० डी० सिंह पुलिस अधीक्षक, गुप्तचर विभाग, पटना को लिया गया था और जिसमें श्री एम० के० झा ने अपना अवलोकन हाथ से लिखा है।

राज्य ने इन दस्तावेजों को उपलब्ध करने से इस आधार पर विरोध किया है कि वे दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162 और 172 के अधीन उन्हें प्रकट नहीं कर सकते और वर्तमान कार्यवाहियों के दौरान पिटीशनर किसी भी तरह से उनका उपयोग करने के लिए हकदार नहीं हैं। इस दलील से एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है और इस प्रश्न पर दोनों ही पक्षों ने बहुत सरगर्मी से बहस की थी यदि हम दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 और 172 की भाषा पर ध्यान दें जिसका आश्रय राज्य की ओर से लिया गया है तो हमें ऐसा नहीं प्रतीत होता कि इसमें कोई गम्भीर कठिनाई है।

2. सबसे पहले हम श्री एल० वी० सिंह, उप-पुलिस महा-निरीक्षक, गुप्तचर विभाग (डकैती निवारण) द्वारा 9 दिसम्बर, 1980 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट और उनके तथा उनके सहयोगी श्री आर० आर० प्रसाद, पुलिस अधीक्षक (डकैती निवारण) और श्रीमती मंजुरी जौहर, पुलिस अधीक्षक (डकैती निवारण) द्वारा 10 जनवरी से 20 जनवरी, 1981 के बीच प्रस्तुत की गई रिपोर्टों से सम्बन्धित प्रश्न पर विचार करते हैं। ये रिपोर्टें हमें राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री के० जी० भगत ने हमारे विचारार्थ दी हैं। इन रिपोर्टों से यह बात स्पष्ट है और जैसा कि राज्य सरकार की ओर से भी हमारे समक्ष कहा गया है कि राज्य सरकार ने भारतीय दण्ड संहिता, 1861 की धारा 3 के अधीन 28-29 दिसम्बर, 1980, को एक आदेश किया था जिसके द्वारा राज्य सरकार ने श्री एल० वी० सिंह को अन्धे किए गए विचाराधीन कैदियों से सम्बन्धित 24 मामलों का अन्वेषण करने का निर्देश दिया था जिसके परिणामस्वरूप सौंपे गए पदीय कर्त्तव्य को निभाते हुए उन्होंने अपने सहयोगी श्री आर० आर० प्रसाद और श्रीमती मंजुरी जौहर की सहायता से इन मामलों का अन्वेषण किया और रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। इन रिपोर्टों में इन मामलों में उनके द्वारा किए गए अन्वेषण सम्बन्धी परिणाम और उनके निष्कर्ष अधिकथित किए गए हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या इन रिपोर्टों को प्रस्तुत करने से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 और 172 प्रभावित होती हैं। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि यह और कुछ नहीं बल्कि ऐसे कुछ विधिक उपबन्ध हैं जिनके अधीन राज्य इन

रिपोर्टों को प्रस्तुत करने का विरोध कर रहा है। राज्य सरकार ने इन रिपोर्टों के सम्बन्ध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 या 124 के अधीन विशेषाधिकार का दावा नहीं किया है। इसलिए यहां आवश्यक यह है कि इस बात पर विचार किया जाए कि वर्तमान मामले में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 और 172 लागू होती है या नहीं।

3. इसके पहले कि हम दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 और 172 पर विचार करें, यह सुविधाजनक होगा कि संहिता के कुछ सुसंगत उपबन्धों को संक्षेप में अधिकथित कर दिया जाए। धारा 2 में परिभाषाएं दी गई हैं और उस धारा के खण्ड (छ) में दी गई परिभाषा के अनुसार 'जांच' से अभिप्रेत है "विचारण से भिन्न ऐसी प्रत्येक जांच जो इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा की जाए"। धारा 2 के खण्ड (ज) में अन्वेषण की परिभाषा दी गई है और इसके अन्तर्गत कहा गया है कि "अन्वेषण के अन्तर्गत वे सब कार्यवाहियां हैं जो इस संहिता के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा या (मजिस्ट्रेट से भिन्न) किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया गया है, साक्ष्य एकत्र करने के लिए की जाएं"। धारा 4 निम्नलिखित रूप में है—

> "4. (1) भारतीय दण्ड संहिता के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार की जाएगी।
>
> (2) किसी अन्य विधि के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबन्धों के अनुसार किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी।"

इस धारा से यह स्पष्ट है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध उस दशा में लागू होते हैं जहां भारतीय दण्ड संहिता अथवा किसी अन्य विधि के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण, जांच, विचारण हो रहा हो या उसके बारे में अन्यथा कार्यवाही की जा रही हो। इसके बाद हम सीधे धारा 162 पर आ जाते हैं जो अपराधों के अन्वेषण के सम्बन्ध में पुलिस की शक्ति से सम्बन्धित अध्याय 12 में आती है। यह धारा निम्नलिखित रूप में है—

> "162(1). किसी व्यक्ति द्वारा किसी पुलिस अधिकारी से इस अध्याय के अधीन अन्वेषण के दौरान किया गया कोई कथन, यदि लेखबद्ध किया जाता है, तो कथन करने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित

नहीं किया जाएगा, और न ऐसा कोई कथन या उसका कोई अभिलेख, चाहे वह पुलिस डायरी में हो या न हो, और न ऐसे कथन या अभिलेख का कोई भाग ऐसे किसी अपराध की, जो ऐसा कथन किए जाने के समय अन्वेषणाधीन था, किसी जांच या विचारण में, इसमें इसके पश्चात् यथा उपबन्धित के सिवाय, किसी भी प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाएगा :

परन्तु जब कोई ऐसा साक्षी, जिसका कथन उपर्युक्त रूप से लेखबद्ध कर लिया गया है, ऐसी जांच या विचारण में अभियोजन की ओर से बुलाया जाता है तब यदि उसके कथन का कोई भाग, सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है तो अभियुक्त द्वारा और न्यायालय की अनुज्ञा से अभियोजन द्वारा उसका उपयोग ऐसे साक्षी का खंडन करने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 द्वारा उपबन्धित रीति से किया जा सकता है और जब ऐसे कथन का कोई भाग इस प्रकार उपयोग में लाया जाता है तब उसका कोई भाग ऐसे साक्षी की पुनः परीक्षा में भी, किन्तु उसकी प्रतिपरीक्षा में निर्दिष्ट किसी बात का स्पष्टीकरण करने के प्रयोजन से ही, उपयोग में लाया जा सकता है ।

(2) इस धारा की किसी बात के बारे में यह न समझा जाएगा कि वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 के खंड (1) के उपबन्धों के अन्दर आने वाले किसी कथन को लागू होती है या उस अधिनियम की धारा 27 के उपबन्धों पर प्रभाव डालती है ।"

यह धारा पुलिस अधिकारी के समक्ष किए गए बयान के इस्तेमाल पर रोक लगाती है जो अध्याय 12 के अधीन अन्वेषण के दौरान दिया गया हो चाहे इसे पुलिस डायरी में अभिलिखित किया गया हो या अन्यत्र, किन्तु धारा की शब्दावली से यह स्पष्ट है कि यह रोक केवल उन्हीं मामलों में लागू हो सकती है जहां ऐसे बयान का उपयोग किसी ऐसे अपराध की जांच या विचारण के लिए किया जाना हो जो बयान के समय अन्वेषणाधीन हो । यदि अध्याय 12 के अधीन अन्वेषण के दौरान किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष बयान लिया गया हो और उसका उपयोग किसी जांच या विचारण से भिन्न किसी अन्य प्रक्रिया के लिए किया जाना है जो ऐसे अपराध से भिन्न है जो बयान देने के समय अन्वेषणाधीन थी तो ऐसी दशा में धारा 162 के अधीन लगाई गई रोक का सहारा नहीं लिया जा सकता । यह धारा अभियुक्त को लाभ देने के लिए अधिनियमित की गई है, जैसा कि इस न्यायालय ने भी तहसीलदार सिंह और

1981(3) eILR(PAT) SC 1

एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[1] वाले मामले में पृष्ठ 890 पर उल्लेख किया गया है इसका आशय "अभियुक्त को साक्षियों के ऐसे कथनों का जो अन्वेषण के दौरान उन्होंने पुलिस के समक्ष दिया है, विचारण के समय उपयोग करने से सम्भवत: इस आधार पर सुरक्षा प्रदान करती है जिससे कि ये कथन ऐसी परिस्थितियों में नहीं किए गए थे जिनसे विश्वास उत्पन्न होता। इस न्यायालय ने तहसीलदार सिंह वाले मामले में एम्परर बनाम आफताब मोहम्मद खां[2] वाले मामले में न्यायाधिपति ब्रांड द्वारा निम्नलिखित अवलोकनों का अनुसरण किया था—

> "जैसा कि हमें प्रतीत होता है कि यह अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस अधिकारियों के समक्ष दिए गए बयानों से होने वाले विपरीत प्रभाव को रोकती है जो बयान के समय यह जानते हुए कि अन्वेषण अभी अपनी आरम्भिक अवस्था में ही है, बयान देने वालों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं और दूसरी ओर इसके माध्यम से अभियुक्त व्यक्तियों को उन लोगों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गई है जिन्हें यह जानकारी है कि अन्वेषण आरम्भ हो चुका है और जो झूठ बोलने के लिए तैयार हैं।"

और न्यायालय ने बली राम टीका राम मराठे बनाम एम्परर[3] वाले मामले में नागपुर उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायापीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की। इस मामले में उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "इस धारा का उद्देश्य अभियुक्त को अतिउत्साही पुलिस अधिकारियों और झूठे गवाहों दोनों से ही बचाने का है।" इसलिए अन्वेषण के दौरान पुलिस के समक्ष दिए गए बयान से अभियुक्त व्यक्ति को सुरक्षा दी जाती है जिसके लिए उपबन्धित किया गया है कि ऐसे बयान का उपयोग अपराध की किसी ऐसी जांच या किसी ऐसे विचारण में धारा के परन्तुक में बताए गए प्रयोजनों से भिन्न अन्यत्र न किया जाए जो ऐसा बयान देते समय अन्वेषणाधीन था। किन्तु यह सुरक्षा किसी अन्वेषणाधीन अपराध से भिन्न जिसकी बाबत जांच या विचारण चल रहा है, किसी अन्य मामले में उपयोगी नहीं है और इसलिए इस धारा द्वारा लगाया गया रोक सीमित रोक है। उदाहरण के लिए, किसी सिविल मामले की कार्यवाही में या संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के अधीन चल रही कार्यवाहियों में लागू नहीं

[1] [1959] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 875.

[2] ए० आई० आर० 1940 इलाहाबाद 291.

[3] ए० आई० आर० 1945 नागपुर 1.

होती और अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारियों के समक्ष दिए गए बयान को इन कार्यवाहियों में साक्ष्य के तौर पर उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इसका उपयोग ऐसी दशा में ही किया जा सकता है यदि वह अन्यथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन सुसंगत हो। इसके अतिरिक्त विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा ऐसे अनेक विनिश्चय दिए गए हैं जिनमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया है और इन विनिश्चयों में से न्यायाधिपति जगमोहन रेड्डी द्वारा मालाकले सूर्यराव बनाम जनकम्मा[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय उल्लेखनिय है। हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई वर्तमान कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किया गया रिट पिटीशन है जिसमें पिटीशनरों ने अनुच्छेद 21 के अधीन अपने मूल अधिकारों के प्रर्वतन की मांग की है। इसलिए यह किसी अपराध की बाबत की जाने वाली न कोई 'जांच' है और न ही कोई 'विचारण'। इसलिए यह दर्शित करना बहुत कठिन लगता है कि राज्य सरकार वर्तमान मामले में किस प्रकार धारा 162 का आश्रय लेना चाहती है। संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किसी रिट पिटीशन के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश XXXV में विहित की गई है और इसके नियम 10 के उपनियम (9) में यह अधिकथित किया गया है कि यदि प्रारम्भिक आदेश की सुनवाई के समय न्यायालय की यह राय है कि पक्षकारों को अपनी-अपनी बात रखने के लिए और अतिरिक्त साक्ष्य रखने का अवसर दिया जाना चाहिए तो न्यायालय ऐसी रीति में जो वह ठीक और उचित समझे, ऐसे साक्ष्य ले सकता है या ऐसे साक्ष्य दिलवा सकता है और यह स्पष्ट है कि ऐसा साक्ष्य लेने की प्रक्रिया भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबन्धों के अधीन ही नियन्त्रित होगी। इसलिए यह भी सर्वविदित है कि अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए किसी रिट पिटीशन में साक्ष्य के रूप में अन्वेषण के दौरान किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष दिए गए बयान को भी इस शर्त के अधीन उपयोग किया जा सकता है कि वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन सुसंगत है और ऐसे बयान को प्रस्तुत करने या उसका उपयोग करने के विरुद्ध धारा 162 कोई रोक नहीं लगा सकती। इसलिए इन परिस्थितियों में, अन्वेषण का परिणाम प्रस्तुत करते हुए श्री एल० वी० सिंह द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट धारा 162 के अधीन साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने और उस पर विचार किए जाने से रोकी नहीं जा सकती भले ही उसमें किसी ऐसे बयान का निर्देश क्यों न हो जो

[1] ए० आई० आर० 1964 आन्ध्र प्रदेश 198.

1981(3) eILR(PAT) SC 1

उनके या उनके सहयोगियों के समक्ष अन्वेषण के दौरान दिया गया है बशर्ते कि वे अन्यथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबन्धों से सुसंगत हो ।

4. अब हम धारा 172 पर वापस आते हैं जिसका कि राज्य सरकार ने आश्रय लिया है । वह धारा इस प्रकार है—

"172. अन्वेषण में कार्यवाहियों की डायरी—

(1) प्रत्येक पुलिस अधिकारी, जो इस अध्याय के अधीन अन्वेषण करता है, अन्वेषण में की गई अपनी दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही को एक डायरी में लिखेगा, जिसमें उसे इत्तिला मिलने का समय, अन्वेषण आरम्भ करने और समाप्त करने का समय तथा उन स्थानों का उल्लेख होगा जहां वह गया और अन्वेषण द्वारा अभिनिश्चित परिस्थितियों का विवरण होगा ।

(2) कोई दण्ड न्यायालय ऐसे मामले से सम्बन्धित पुलिस डायरियों को मंगा सकता है जो न्यायालय में जांच या विचारण के अधीन है और ऐसी डायरियों को मामले में साक्ष्य के रूप में तो नहीं किन्तु ऐसी जांच या विचारण में अपनी सहायता के लिए उपयोग में ला सकता है ।

(3) न तो अभियुक्त और न उसके अभिकर्ता ऐसी डायरियों को मंगाने के हकदार होंगे और वे केवल इस कारण से उन्हें देखने के हकदार होंगे कि न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट की गई हैं, किन्तु यदि वे उस पुलिस अधिकारी द्वारा, जिसने उन्हें लिखा है, अपनी स्मृति को ताजा करने के लिए उपयोग में लाई जाती है, या यदि न्यायालय उन्हें ऐसे पुलिस अधिकारी की बातों का खण्डन करने के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाता है तो भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की यथास्थिति, धारा 161 या 145 के उपबन्ध लागू होंगे ।"

हमारे समक्ष इस धारा के अधीन विचार के लिए जो पहला प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या श्री एल० वी० सिंह और उनके सहायकों द्वारा अन्वेषण करने के परिणामस्वरूप जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है वह इस धारा के अर्थान्तर्गत केस डायरी का भाग है या नहीं । इस संदर्भ में श्रीमती हिंगोरानी और डा० चितले ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि यह रिपोर्ट इस धारा द्वारा यथा-अनुध्यात केस डायरी का भाग नहीं हो सकती क्योंकि राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट किए जाने पर जो अन्वेषण श्री एल० वी० सिंह द्वारा किया

गया वह भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 के अधीन किया गया था न कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 12 के अधीन क्योंकि दण्ड संहिता के अधीन अन्वेषण के मामले में ही धारा 172 लागू होती है। अपनी इस मान्यता के समर्थन में श्रीमती हिंगोरानी ने इस न्यायालय के **बिहार राज्य बनाम जे० ए० सी० सलदाना**[1] वाले मामले के विनिश्चय का आश्रय लिया। राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान काउन्सेल श्री के० जी० भगत ने यह निवेदन किया कि भले ही श्री एल० वी० सिंह ने यह अन्वेषण राज्य सरकार के निर्देश के अधीन भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए ही क्यों न किया हो फिर भी उनके द्वारा किया गया यह अन्वेषण संहिता के अध्याय 12 के अधीन किया गया मानना चाहिए और इसलिए अन्वेषण के परिणाम अधिकथित करने वाली इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में धारा 172 लागू होती है। उन्होंने यह स्वीकार किया कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि **बिहार राज्य बनाम जे० ए० सी० सलदाना**[1] वाले मामले में अधिकथित किया गया था कि राज्य सरकार को भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 के अधीन जांच कराने या पुनः जांच कराने का निदेश देने की शक्ति को स्वीकार किया गया है किन्तु उन्होंने यह दलील दी कि समान रूप से इस विनिश्चय से यह बात भी स्पष्ट है कि "अन्वेषण करने या अतिरिक्त अन्वेषण करने के लिए निर्देश देने की शक्ति और बात है तथा अन्वेषण करने वाले व्यक्ति की सक्षमता और अन्वेषण के लिए उसके द्वारा अपनाई गई पद्धति और प्रक्रिया एक भिन्न बात है।" उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 36 में यह उपबन्ध किया गया है कि किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से वरिष्ठ पुलिस अधिकारी भी अपनी नियुक्ति की स्थानीय अधिकारिता के भीतर उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो कि अधिकारी द्वारा अपने थाने के क्षेत्र के भीतर की जा सकती है और श्री एल० वी० सिंह, पुलिस उप-महानिरीक्षक की हैसियत से पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी से रैंक में वरिष्ठ हैं इसलिए वे विचाराधीन कैदियों के अंधे किए जाने वाले मामलों से सम्बन्धित अपराधों का अन्वेषण करने के लिए सक्षम है और राज्य सरकार ने भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 के अधीन श्री एल० वी० सिंह को अन्वेषण के लिए निदेश देकर अपनी शक्तियों के भीतर ही काम किया है। किन्तु "अन्वेषण की पद्धति और प्रक्रिया" वही होनी चाहिए थी जो दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 12 के अधीन पुलिस थाने के भारसाधक

---

[1] [1981] 3 उम० नि० प० 256=[1980] 2 एस० सी० आर० 16,

अधिकारी द्वारा अन्वेषण के लिए अपनाई जाती है और इसलिए श्री एल० वी० सिंह द्वारा किया गया अन्वेषण उसी अध्याय के अधीन किया गया अन्वेषण माना जाना चाहिए और तदनुसार धारा 172 लागू की जानी चाहिए। इन परस्पर विरोधी दलीलों से दो बहुत ही दिलचस्प प्रश्न सामने आए हैं। पहला तो यह कि क्या राज्य सरकार द्वारा भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 के अधीन दिए गए निर्देश के परिणामस्वरूप किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण अध्याय 12 के अधीन किया गया अन्वेषण है और उसके द्वारा अन्वेषण के दौरान तैयार की गई डायरी पर धारा 172 लागू होती है और दूसरा प्रश्न यह है कि क्या अन्वेषण के परिणामस्वरूप ऐसे अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट धारा 172 के अर्थान्तर्गत केस डायरी का एक भाग है या नहीं। तथापि हम यहां यह ठीक नहीं समझते कि इन दोनों प्रश्नों की गहराई में जाएं और इस प्रयोजन के लिए हम राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री के० जी० भगत द्वारा प्रस्तुत विचारों को ही पर्याप्त समझते हैं। इन दोनों ही प्रश्नों के सम्बन्ध में उनका यह निवेदन ठीक लगता है और अन्वेषण के परिणामों को अधिकथित करने वाली श्री एल० वी० सिंह द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट केस डायरी का ही एक भाग है और इसलिए धारा 172 उस पर लागू होती है। किन्तु ऐसा होने के बावजूद भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या ये रिपोर्टें धारा 172 के अधीन प्रकट किए जाने से प्रतिबंधित हैं और इसके लिए इस धारा की शब्दावली पर विचार करना आवश्यक होगा।

5. किसी पुलिस अधिकारी द्वारा अध्याय 12 के अधीन अन्वेषण करने के दौरान डायरी तैयार करने के सम्बन्ध में धारा 172 के उद्देश्य को बहुत प्रशंसनीय ढंग से **क्वीन एम्प्रेस बनाम मन्नू**[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति ऐंज द्वारा निम्नलिखित शब्दों में अधिकथित किया गया है—

> "अन्वेषण की आरम्भिक प्रक्रिया जो अपराध करने के तुरन्त बाद आरम्भ होती है, निश्चित रूप से बहुत सारे मामलों में पुलिस पर ही छोड़ दी जाती है और इसके लिए पुलिस की ईमानदारी, उसकी क्षमता, उसका स्वनिर्णयाधिकार और उसके निर्णय पर पूर्णरूपेण विश्वास करना होगा। यह आवश्यक है कि जनता को अपराधियों से बचाने के लिए, विधि के मनमानेपन से बचाने के लिए और उन व्यक्तियों को जिन पर दाण्डिक अपराध करने का आरोप है उनकी प्रतिरक्षा के लिए भी आवश्यक है जिससे कि ऐसा

---

1 आई० एल० आर० [1897] 19 इलाहाबाद 390.

मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश जिसके समक्ष मामला अन्वेषणाधीन है या विचाराधीन है, वह इस बात को सुनिश्चित कर सके कि उसे उस पुलिस अधिकारी के माध्यम से जो मामले का अन्वेषण कर रहा है यह पता चल सके कि उसके सम्बन्ध में पुलिस की गलत या सही अथवा भ्रम में डालने वाली दिन प्रति दिन की सूचना क्या है और उस पुलिस अधिकारी ने स्वयं क्या कर्तव्य निभाया है।"

इसलिए किसी मामले की जांच या उसका विचारण करने वाला दाण्डिक न्यायालय धारा 172 की उपधारा (2) के अधीन मामले से सम्बन्धित पुलिस डायरी को मांगने के लिए सशक्त है और दाण्डिक न्यायालय ऐसी डायरी को साक्ष्य के तौर पर तो नहीं किन्तु ऐसी जांच या ऐसे विचारण में सहायता के लिए उपयोग कर सकता है। किन्तु धारा 172 की उपधारा (3) के आधार पर दाण्डिक न्यायालय को निर्दिष्ट केस डायरी के सम्बन्ध में न तो अभियुक्त को और न ही उसके अभिकर्ताओं को यह हक है कि वे ऐसी डायरी की मांग करें और न ही उन्हें यह डायरी देखने का ही हक प्राप्त है। इसके बावजूद भी यदि ऐसा पुलिस अधिकारी जिसने वह डायरी तैयार की है, अपनी याददाशत को ताजा करने के लिए उसका प्रयोग करता है अथवा यदि दाण्डिक न्यायालय जांच या विचारण के दौरान ऐसे अधिकारी की बातों का खण्डन करने के प्रयोजन के लिए उसका प्रयोग करता है वहां यथास्थिति, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 161 या 145 के उपबंध लागू होंगे और अभियुक्त केस डायरी में केवल उसी प्रविष्टि को देखने का हकदार होगा जो इन्हीं दोनों प्रयोजनों में से किसी के लिए निर्दिष्ट की गई है और डायरी का केवल वही भाग जो कि न्यायालय की राय में इस प्रकार उपयोग में लाई गई किसी प्रविष्टि को पूरी तरह से समझने के लिए आवश्यक है उसे दर्शित किया जा सकेगी। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि धारा 172 में अधिनियमित केस डायरी के प्रस्तुत किए जाने और उसके उपयोग के विरुद्ध लगाई गई रोक केवल अपराधों से सम्बन्धित जांच या विचारण के विरुद्ध लगाई गई रोक है भले ही यह रोक समिति ही क्यों न हो फिर भी किसी जांच या विचारण के दौरान यह रोक उस समय लागू नहीं होगी यदि इस डायरी का उपयोग किसी पुलिस अधिकारी द्वारा अपनी याददाशत को ताजा करने या किसी दाण्डिक न्यायालय द्वारा किसी पुलिस अधिकारी की बातों का खण्डन करने के प्रयोजन के लिए किया जाता है। यह बात स्पष्ट है कि यह रोक उस समय लागू नहीं होती जहां केस डायरी को किसी सिविल कार्यवाही के सम्बन्ध में मंगाया जाता है और उसके साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जाता है अथवा संविधान

1981(3) eILR(PAT) SC 1

के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के अधीन किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में मंगाया जाता है और विशेष रूप से उस समय जबकि केस डायरी की मांग करने वाला पक्षकार कोई अभियुक्त अथवा उसका ऐसा अभिकर्ता न हो जिसका अपराध से सम्बन्ध हो और जिससे केस डायरी सम्बन्धित है। अब संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए वर्तमान रिट पिटीशन में यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो गई है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत मूल अधिकारों को प्रवृत्त करने के लिए लाए गए इस रिट पिटीशन की प्रक्रिया न ही किसी अपराध से सम्बन्धित 'जांच' है और न ही 'विचारण' है और न ही इस रिट पिटीशन की सुनवाई करने वाला न्यायालय दाण्डिक न्यायालय है और न ही पिटीशनर या उनके अभिकर्त्ता जहां तक उनके अन्धे किए जाने का प्रश्न है, किसी अपराध के अभियुक्त हैं। इसलिए श्री एल० वी० सिंह द्वारा अन्वेषण के परिणामस्वरूप प्रस्तुत की गई रिपोर्ट केस डायरी का एक भाग ही क्यों न हो, फिर भी हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए इस रिट पिटीशन के सम्बन्ध में उसे धारा 172 के अधीन प्रस्तुत किए जाने और उसका उपयोग किए जाने से कैसे रोका जा सकता है।

6. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री के० जी० भगत ने धारा 172 में प्रयुक्त विशिष्ट भाषा के कारण इस मामले में उत्पन्न होने वाली कठिनाई का एहसास करते हुए श्री एल० वी० सिंह द्वारा दी गई अन्वेषण की रिपोर्ट को बचाए रखने के प्रयोजन के लिए धारा 172 में अन्तर्विष्ट सिद्धान्त को प्रकट करने का एक साहसपूर्ण प्रयास किया है। उन्होंने यह दलील दी कि यदि धारा 172 के निबन्धनों के अधीन जांच या विचारण के अधीन कोई अभियुक्त सीमित प्रयोजनों को छोड़ कर केस डायरी की मांग करने या उसे देखने का हकदार नहीं है तो ऐसी दशा में यह विश्वास करना बहुत कठिन है कि विधानमण्डल का ऐसा आशय था कि परिवादी या किसी तीसरे पक्षकार को किसी अन्य कार्यवाही के दौरान केस डायरी मंगाने या उसे देखने का अधिकार मिलना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से अन्वेषण की गोपनीयता को खतरा हो सकता है और इससे धारा 172 का उद्देश्य और प्रयोजन भी निष्फल हो जाता है। इसलिए उस धारा के सिद्धान्त को लागू करते हुए हमें यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि केस डायरी भी प्रकट नहीं की जा सकती और इतना ही नहीं, किसी सिविल कार्यवाही में भी प्रतिवादी या कोई तीसरा पक्षकार न तो इसकी मांग कर सकता है और न ही इसे देख सकता है। हमारी राय में यह दलील पूर्णतः निराधार है। यह

दलील धारा 172 की आत्मा को भी ठेस पहुंचाने वाली है और अर्थान्वयन की किसी भी मान्य पद्धति में ऐसा अर्थान्वयन पूर्णतः वर्जित है। धारा 172 के निबन्धनों के अधीन केस डायरी को प्रस्तुत करना और उसका उपयोग करना निर्बन्धित है अथवा नहीं यह कहना बहुत मुश्किल है और उस धारा में अन्तर्विष्ट किसी सिद्धान्त को मानकर और उसका अर्थ विस्तार अथवा विश्लेषण कर उसे वर्जित नहीं किया जा सकता यदि वह उसकी स्पष्ट भाषा के भीतर नहीं आती। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हमने न्याय की एक विरोधी पद्धति अपना रखी है और इस पद्धति के अधीन विरोधी पक्षकारों के बीच होने वाले झगड़े से सत्य को निकालने के लिए यह आवश्यक है कि जांच से सम्बन्धित सभी सुसंगत तथ्य न्यायालय के समक्ष लाए जाएं और कोई भी सुसंगत तथ्य बन्द करके न रखे जाएं जिससे कि न्यायालय के समक्ष तथ्यों का विकृत या अधूरा चित्र प्रस्तुत न हो सके और उससे कोई अन्याय न हो जाए। **यूनाइटेड स्टेट्स बनाम निक्सन**[1] वाले मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया : "परस्पर विरोधी पद्धति में समस्त सुसंगत तथ्यों को सामने लाना मौलिक और समग्र दोनों ही हैं। ऐसी दशा में यदि निर्णय के लिए तथ्यों के आंशिक या आनुमानिक विवेचन को आधार बनाया जाएगा तो न्याय का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। इस पद्धति में न्यायिक पद्धति में निष्ठा और जनता के विश्वास को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि साक्ष्य के नियमों के स्वरूप के भीतर रहते हुए समस्त तथ्यों को पूर्ण रूप से प्रकट किया जाए।" न्यायिक प्रक्रिया के समुचित कार्यान्वयन के लिए सच्चाई के समाधानपूर्वक और सुनिश्चित निराकरण के लिए यह आज्ञापक है कि न्यायालयों के समक्ष समस्त सुसंगत तथ्यों को रखा जाए किन्तु विधि द्वारा बहुत आवश्यक मामलों में जिनमें बहुत महत्वपूर्ण और अनिवार्य हित सुरक्षित रखने की आवश्यकता हो, यह उपबन्ध किया जा सकता है कि साक्ष्य का कोई विशेष अंश भले ही वह सुसंगत क्यों न हो, साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा और इसकी मांग भी नहीं की जा सकेगी। ऐसे अपवाद अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 122, 123, 124, 126 और 129 में तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 और 172 में दिए गए हैं। चूंकि न्याय के हित में समस्त सुसंगत साक्ष्य उपलब्ध कराने की उचित मांग के अपवाद हैं इसलिए इनका अर्थान्वयन बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए न कि बढ़ा चढ़ाकर "क्योंकि ये सत्य की खोज में बाधा पहुंचाने वाले हैं।" इसलिए धारा 172 में दिए गए प्रतिषेध

[1] [1974] 418 यू० एस० 683=14 लाइयर्स एडीशन (सेकंड सीरिज) 1039.

को ऐसे मामलों में लागू करना ठीक नहीं होगा जो स्पष्ट रूप से इस धारा की शब्दावली में नहीं आते, ऐसे मामलों के सम्बन्ध में उस धारा को उस धारा में निहित सिद्धान्त या उसकी आत्मा में अन्तर्विष्ट सिद्धान्त के आधार पर लागू नहीं किया जाना चाहिए। यह एक कमजोर अनुमान है जो राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् अधिवक्ता के तर्कों के समक्ष नहीं टिक सकता। इसलिए ऐसा करना वस्तुतः इस न्यायालय द्वारा विधि के नियमों के प्रति किए गए सांविधानिक संकल्प से असंगत होगा।

7. इसके आधार पर अब हम इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या श्री एल० वी० सिंह और उनके सहायकों द्वारा किए गए अन्वेषण के परिणामस्वरूप तैयार की गई रिपोर्टें भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उपबन्धों के अधीन इतनी सुसंगत हैं कि उन्हें साक्ष्य में प्रस्तुत और ग्रहण किया जा सके। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने समक्ष चल रही कार्यवाही की प्रकृति पर विचार करें और उन मुद्दों को देख लें जो इससे उद्भूत होते हैं। हमारे समक्ष चल रही कार्यवाही अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किया गया रिट पिटीशन है जिसे अनुच्छेद 21 में उपदर्शित पिटीशनरों के मूल अधिकारों को प्रवृत्त करने के लिए फाइल किया गया है। पिटीशनरों ने यह शिकायत की है कि बन्दी बनाए जाने के पश्चात् पुलिस अभिरक्षा के दौरान उन्हें पुलिस दल के ऐसे सदस्यों द्वारा अंधा कर दिया गया जो अपनी निजी हैसियत में नहीं बल्कि पुलिस अधिकारी की हैसियत से काम कर रहे थे और इस प्रकार अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत हमारे जीवन रक्षा सम्बन्धी मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है और इस उल्लंघन के लिए प्रतिकर का संदाय करने का उत्तरदायित्व राज्य पर है। विद्वान् महान्यायवादी ने जो इस मामले में पहले राज्य की ओर से उपस्थित हुए थे, यह दलील दी कि वह जांच जिस पर न्यायालय यह पता लगाने के लिए बहुत जोर दे रहा है कि क्या पिटीशनरों को पुलिस अभिरक्षा के दौरान पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्धा बनाया गया था या नहीं, बिल्कुल असंगत है क्योंकि उनके निवेदन के अनुसार भले ही पिटीशनरों को ऐसी स्थिति में ही अन्धा क्यों न किया गया हो, राज्य पिटीशनरों को प्रतिकर देने के लिए उत्तरदायी नहीं है। इसके लिए पहला कारण तो यह है कि राज्य अपने पुलिस अधिकारियों के ऐसे कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं है जो वे अपनी शक्ति या प्राधिकार से बाहर जाकर करते हैं और इसलिए पुलिस द्वारा विचारणाधीन कैदियों को अन्धा किए जाने के कृत्य के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उससे राज्य सरकार द्वारा अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकारों का उल्लंघन हुआ है और

दूसरी बात यह है कि भले ही पुलिस अधिकारियों द्वारा उन्हें अन्धा किए जाने के कारण यह मान भी लिया जाए कि अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकारों का उल्लंघन हुआ है फिर भी उस अनुच्छेद का सही अर्थान्वयन करने पर पिटीशनरों को प्रतिकर देने के सम्बन्ध में राज्य का कोई दायित्व प्रकट नहीं होता। यह बात स्पष्ट है कि विद्वान् महान्यायवादी द्वारा यह दलील इसलिए रखी गई है जिससे कि इस न्यायालय द्वारा की जाने वाली जांच को पूर्वाधार पर ही अधिकथित किया जा सके जिससे कि न्यायालय इस मामले में आगे जांच करने की कार्यवाही न करे। किन्तु हम नहीं समझते कि हम विद्वान् महान्यायवादी की इस दलील को स्वीकार कर लेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विद्वान् महान्यायवादी द्वारा उठाए गए दोनों प्रश्न महत्वपूर्ण हैं किन्तु इन दोनों प्रश्नों के सम्बन्ध में उनके द्वारा रखे गए तर्क प्रथमदृष्ट्या इतने सशक्त और ग्राह्य नहीं हैं कि हम तथ्यों के सम्बन्ध में जांच किए बिना उन्हें आरम्भिक आक्षेप मानकर पहले उनका विनिश्चय करें। जब हम विद्वान् महान्यायवादी के तर्कों पर विचार करते हैं तो कुछ गम्भीर सन्देह प्रकट होते हैं। यदि राज्य का कोई अधिकारी विधिक प्राधिकार के बिना अपनी पदीय हैसियत में कार्य करते हुए किसी व्यक्ति के जीवन को संकट में डालने या उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को समाप्त करने की धमकी देता है तो क्या ऐसा व्यक्ति ऐसे अधिकारी के माध्यम से अनुच्छेद 21 के अधीन अपने मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाला कृत्य करने से राज्य को रोकने के लिए न्यायालय की शरण नहीं ले सकता? क्या ऐसे मामले में राज्य अपने बचाव के लिए यह कह सकता है कि वह अनुच्छेद 21 के अधीन पिटीशनरों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण इसलिए नहीं कर रहे हैं क्योंकि जो अधिकारी उक्त धमकी दे रहे हैं वे विधि की सीमा के बाहर काम कर रहे हैं अतः वे उसके प्राधिकार क्षेत्र से बाहर हैं और इसलिए राज्य उनके कारनामों के लिए उत्तरदायी नहीं है। क्या इससे अनुच्छेद 21 का उपहास नहीं होता और इससे यह अनुच्छेद नगण्य नहीं हो जाता। इस आधार पर तो यह अनुच्छेद रेत की दीवार जैसा रह जाता है। यदि अधिकारी विधि के अनुसार कृत्य करता है तो अनुच्छेद 21 का भंग हुआ नहीं माना जाएगा और यदि वह विधि के प्राधिकार के बिना कार्य करता है तो राज्य यह दलील दे सकता है कि वह उसके कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं है और इसलिए अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं हुआ है। इसी प्रकार यदि राज्य द्वारा अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत किन्हीं मूल अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने की आशंका पैदा होती है तो पिटीशनर जो उससे क्षुब्ध हैं, अनुच्छेद 32 के अधीन ऐसे अतिक्रमण के विरुद्ध न्यायालय

1981(3) eILR(PAT) SC 1

की शरण ले सकता है और यदि राज्य के द्वारा इस प्रकार का कोई निरन्तर कार्य हो रहा है जो अनुच्छेद 21 के अधीन मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाला है तो पिटीशनर अनुच्छेद 32 के अधीन न्यायालय में जा सकता है और ऐसे हो रहे निरन्तर कृत्य को तत्काल बन्द करने के लिए रिट जारी करने की याचना कर सकता है। किन्तु जहां राज्य द्वारा किए गए किसी कृत्य के परिणामस्वरूप अनुच्छेद 21 के अधीन किसी मूल अधिकार का भंग हो चुका हो और पिटीशनर को अपने शरीर के किसी अंग से हाथ धोना पड़ा हो तो क्या ऐसी स्थिति में पिटीशनर को अनुच्छेद 32 के अधीन अपने मूल अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध कोई उपचार प्राप्त नहीं है? क्या ऐसी दशा में न्यायालय राज्य द्वारा पिटीशनर के मूल अधिकारों का उल्लंघन होते हुए असहाय मूक दर्शक की तरह देखता रहेगा और पिटीशनरों से यह कहेगा कि संविधान में तो आपके लिए मूल अधिकारों की गारण्टी की गई है और आपको न्यायालय में अपने मूल अधिकारों के प्रवर्तन हेतु मामला लाने के लिए भी मूल अधिकार दिया गया है किन्तु न्यायालय आपको कोई राहत देने में असमर्थ है। यही ऐसी कुछ शंकाएं हैं जो प्रथमदृष्ट्या विद्वान् महान्यायवादी द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों के कारण हमारे मन में उत्पन्न हुई हैं और इसलिए हम मामले के तथ्यों की जांच किए बिना इस दलील को आरम्भिक आक्षेप मानकर उस पर विचार करना ठीक नहीं समझते। यदि हम रिट पिटीशन में किए गए प्रकथन पर ध्यान दें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पिटीशनर अनुच्छेद 32 के अधीन अनुतोष का दावा करने में तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि वे यह सिद्ध नहीं कर देते कि अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है और इस प्रकार का उल्लंघन सिद्ध करने के लिए उन्हें यह दर्शित करना होगा कि उन्हें गिरफ्तारी के समय ही अथवा पुलिस की अभिरक्षा में ही पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्धा बनाया गया था। यह ऐसा आधारभूत तथ्य है जिसे अनुच्छेद 32 के अधीन अनुतोष का दावा करने के पूर्व ही पिटीशनरों को साबित करना होगा और इसलिए हमारे लिए तर्कसंगत यही होगा कि हम पहले इस बात पर विचार करें कि क्या पिटीशनरों द्वारा इस आधारभूत तथ्य की विद्यमानता दर्शित की गई है। यह तभी सम्भव है यदि पिटीशनर इस बात को सिद्ध कर सके कि उन्हें गिरफ्तारी के समय अथवा पुलिस अभिरक्षा के दौरान ही पुलिस दल के सदस्यों द्वारा अन्धा किया गया था और यदि पिटीशनर इस आधारभूत सिद्धान्त को सिद्ध करने में असफल रहते हैं तभी विद्वान् महान्यायवादी द्वारा उठाए गए अन्य प्रश्नों पर सिद्धान्ततः विचार

किया जाएगा। इसलिए, जैसा कि इस समय परामर्श दिया गया है, हमारा यह मत है कि पहले हम इस बात की जांच करें कि क्या पिटीशनरों को पुलिस अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी के समय अथवा गिरफ्तारी के पश्चात् पुलिस अभिरक्षा के दौरान अन्धा किया गया था और इसी जांच के सन्दर्भ में हमें इस बात पर विचार करना है कि क्या श्री एल० वी० सिंह द्वारा तैयार की गई रिपोर्टें भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन साक्ष्य में ग्रहण किए जाने के लिए सुसंगत हैं अथवा नहीं।

8. इसी प्रक्रम पर हम राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले श्री के० जी० भगत द्वारा रखे गए इस तर्क के प्रति भी निर्देश करते हैं कि यदि न्यायालय इस सम्बन्ध में कोई जांच कराता है और उसके परिणामस्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि पिटीशनरों को पुलिस दल के सदस्यों द्वारा गिरफ्तारी के समय अथवा पुलिस अभिरक्षा के दौरान अंधा किया गया था, तो उसके सम्बन्ध में ऐसा करना न्यायालय द्वारा पुलिस अधिकारियों को उनके दोष के लिए न्यायनिर्णयन करने के बराबर होगा जो कि इस रिट पिटीशन में पक्षकार नहीं है और ऐसा करना पूर्णतः अनुचित होगा। इसलिए यह जांच न्यायालय द्वारा तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक अन्वेषण कार्य पूर्ण नहीं हो जाता और पुलिस अधिकारियों का दोषी या निर्दोष होना सिद्ध नहीं हो जाता। हम श्री के० जी० भगत की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते। जब रिट पिटीशन पर विचारण करने वाला न्यायालय ही इस मुद्दे की जांच करने की कार्यवाही आरम्भ करता है कि पिटीशनरों को पुलिस अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी के समय अथवा पुलिस अभिरक्षा के दौरान अंधा बनाया गया था अथवा नहीं तो उस समय यह कार्य किसी अधिकारी विशेष के दोष के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन को लेकर इस दृष्टि से नहीं किया जाता कि उसे दण्डित किया जाए अपितु इस प्रयोजन के लिए किया जाता है कि अनुच्छेद 21 के अधीन पिटीशनरों के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है अथवा नहीं और ऐसे उल्लंघन के लिए राज्य प्रतिकर का संदाय करने के लिए उत्तरदायी है अथवा नहीं। इस प्रकार की जांच की प्रकृति और उसका उद्देश्य किसी दाण्डिक मामले की जांच की प्रकृति और उद्देश्य से बिल्कुल भिन्न होता है और इस मुद्दे पर रिट पिटीशन के संबन्ध में किए गए किसी विनिश्चय का किसी ऐसी दाण्डिक कार्यवाही में कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं होता जो किसी विशेष पुलिस अधिकारी के विरुद्ध की जानी है। इस प्रकार की स्थिति बहुधा उस समय उत्पन्न होती है जब किसी मोटरयान के चालक की असावधानी से की गई किसी दुर्घटना के बदले प्रतिकर का दावा किसी सिविल न्यायालय या

अधिकरण में किया जाता है और ऐसी कार्यवाही में दावेदार को प्रतिकर देने के प्रयोजन के लिए न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना होता है कि मोटर यान के चालक ने मोटरयान चलाते समय असावधानी बरती है या नहीं भले ही ऐसे चालक के विरुद्ध तेज रफ्तार और असावधानीपूर्वक यान चलाने के सम्बन्ध में कोई दाण्डिक वाद लम्बित ही क्यों न हो। ऐसे न्यायालय के विरुद्ध जो किसी सिविल कार्यवाही या रिट पिटीशन पर विचारण कर रहा है, किसी दाण्डिक कार्यवाही के लम्बित होने को उसके विरुद्ध निषेध नहीं माना जा सकता भले ही दोनों में समान विवाद्यक अन्तर्वलित क्यों न हो। दोनों ही प्रकार की कार्यवाहियां बिल्कुल अलग-अलग हैं और वे एक दूसरे को वर्जित नहीं कर सकतीं। ऐसा हो सकता है कि किसी दिए गए मामले में यदि अन्वेषण का कार्य अभी भी चल रहा हो वहां न्यायालय अपने समक्ष चल रही जांच को तब तक के लिए रोक सकता है जब तक अन्वेषण पूरा नहीं हो जाता अथवा यदि न्यायालय न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक समझे तो वह उस मामले की जांच को तब तक के लिए स्थगित भी कर सकता है जब तक कि ऐसे अन्वेषण के परिणामस्वरूप किया जाने वाला अभियोजन समाप्त नहीं हो जाता किन्तु यह ऐसा विषय है जो पूर्णतः न्यायालय के स्वनिर्णय अधिकार पर ही निर्भर है और इस तरह का कोई वर्जन नहीं है जिससे कि न्यायालय को अपने समक्ष चल रही किसी जांच को कार्यवाही से मात्र इसलिए रोक दे कि अन्वेषण या अभियोजन अभी चल रहा है।

9. पूर्वोक्त विचार-विमर्श से यह बात स्पष्ट है कि वर्तमान रिट पिटीशन में न्यायालय के समक्ष हो रही जांच में विवादगत तथ्य यह है कि क्या पिटीशनरों को पुलिस दल के सदस्यों द्वारा गिरफ्तारी के समय या पुलिस अभिरक्षा के दौरान अन्धा बनाया गया था। इस बात का अवधारण करने के लिए कि क्या श्री एल० वी० सिंह द्वारा और उनके सहयोगियों द्वारा किए गए अन्वेषण के परिणामस्वरूप तैयार की गई रिपोर्ट पर इस दृष्टि से विचार करना आवश्यक है कि न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने वाले विवादगत तथ्य पर उसका कोई विशेष प्रभाव पड़ेगा। यह एक सामान्य आधार है कि श्री एल० वी० सिंह को राज्य सरकार ने भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 3 के अधीन 24 विचारणाधीन कैदियों को अन्धा बनाए जाने के मामले में अन्वेषण करने का निर्देश दिया था जिसमें विचारणाधीन कैदियों द्वारा इस आशय का अभिकथन किया गया था और इस आशय की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखाई गई थी कि उन्हें पुलिस अभिरक्षा के दौरान पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्धा बना दिया गया था। श्री एल० वी० सिंह ने अपने

सहयोगियों के माध्यम से यह अन्वेषण कार्य पूरा किया और राज्य सरकार द्वारा अपनी पदीय हैसियत में सौंपे गए इस कर्तव्य का पालन करते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इन रिपोर्टों का इन्हीं विवाद्यकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है कि 24 विचारणाधीन कैदियों को किस रीति से और किन व्यक्तियों द्वारा अन्धा किया गया था और इसी बात का अन्वेषण करने का निदेश राज्य सरकार ने श्री एल० वी० सिंह को दिया था और यदि ऐसी बात है तो, यह समझना कठिन लगता है कि किस प्रकार राज्य सरकार इन रिपोर्टों को वर्तमान मामले में प्रस्तुत करने और साक्ष्य के रूप में उपयोग करने से रोक सकती है। ये रिपोर्टें स्पष्टतः भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन सुसंगत हैं जो निम्नलिखित रूप में है—

> "35. किसी लोक या अन्य राजकीय पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख में की गई प्रविष्टि, जो किसी विवाद्यक या सुसंगत तथ्य का कथन करते हैं और किसी लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में या उस देश की जिसमें ऐसी पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख रखा जाता है, विधि द्वारा विशेष रूप से व्यादिष्ट कर्त्तव्य के पालन में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई है, स्वयं सुसंगत तथ्य है।"

ये रिपोर्टें सरकारी अभिलेख का एक भाग हैं और वे विवादगत तथ्य से इस दृष्टि से सम्बन्धित हैं कि किस प्रकार और किसके द्वारा 24 विचारणाधीन कैदियों को अंधा बनाया गया था और यह मान लिया गया है कि ये रिपोर्टें श्री एल० वी० सिंह द्वारा, जो लोक सेवक हैं, अपने पदीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए तैयार की गई हैं और इस प्रकार वे स्पष्टतः और निस्सन्देह धारा 35 के अधीन आती हैं। धारा 35 की भाषा इतनी स्पष्ट है कि इस धारा के निर्वचन के लिए किसी विनिश्चित मामले का उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती किन्तु फिर भी वर्तमान मामले में इस धारा के लागू होने के सम्बन्ध में हम दो विनिश्चय उद्धृत करना चाहते हैं। पहला विनिश्चय कंवरलाल गुप्ता बनाम अमरनाथ चावला[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा किया गया है। इस मामले में मुख्य प्रश्न यह था कि क्या निर्वाचन के दौरान किसी सार्वजनिक सभा से सम्बन्धित गुप्तचर विभाग (विशेष शाखा) के अधिकारियों द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट धारा 35 के अधीन सुसंगत है अथवा नहीं और इस न्यायालय ने उसे इस आधार पर सुसंगत अभिनिर्धारित किया कि वे "लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्तव्यों

[1] [1975] 1 उम० नि० प० 925=[1975] 3 एस० सी० सी० 646.

1981(3) eILR(PAT)

का निर्वहन करते हुए तैयार की गई थीं और साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के प्रथम भाग के अधीन आती थीं क्योंकि उनमें प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा आयोजित सार्वजनिक सभा में दिए गए वक्तव्य निहित थे" । इस न्यायालय ने पी० सी० पी० रेड्डियार बनाम एस० पेरुमल[1] वाले मामले में किए गए अपने ही पूर्व विनिश्चय का अनुसरण किया था । इसी प्रकार जगदत्त बनाम शिवपाल[2] वाले मामले में न्यायाधिपति वज़ीरहसन ने यह अभिनिर्धारित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 202 के अधीन किसी कानूनगो द्वारा की गई जांच के परिणाम को जब वह किसी विवाद्यक तथ्य से सम्बन्धित होता है और सरकारी दस्तावेज़ों में दर्ज किया जाता है और किसी लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में किया जाता है तो ऐसी रिपोर्ट धारा 35 के अधीन साक्ष्य के लिए अनुज्ञेय है । अब हम यह देखते हैं कि चन्दू लाल बनाम पुष्कर राय[3] वाले मामले में उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा भी समान विचार व्यक्त किया गया था । इस मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया था कि राजस्व अधिकारियों द्वारा जिन्हें न्यायिक प्राधिकारी नहीं माना जाता, तैयार की गई रिपोर्ट जिसमें पक्षकारों के व्यक्तिगत अधिकारों के सम्बन्ध में राय प्रकट की जाती है, धारा 35 के अधीन उसी प्रकार सुसंगत मानी जाएगी मानो वह किसी लोक सेवक द्वारा उसके पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में तैयार की गई रिपोर्ट हो क्योंकि वह सरकारी कार्यवाही और ऐतिहासिक तथ्यों से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध कराती है । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी लाइयोनैल एडवरीज़ लिमिटेड बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[4] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि वन अधिकारी और उसके वरिष्ठ अधिकारी अर्थात् वन रक्षक के बीच हुए शासकीय पत्र-व्यवहार जो वन अधिकारी द्वारा अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में किए गए थे, धारा 35 के अधीन साक्ष्य के रूप में अनुज्ञेय होंगे । इसलिए हमारे मन में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि श्री एल० वी० सिंह और उनके सहयोगियों द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट जिसमें अन्वेषण के परिणाम अधिकथित किए गए हैं, स्पष्टतः धारा 35 के अधीन सुसंगत है क्योंकि वे विवादगत तथ्य से सम्बन्धित हैं और एक लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में तैयार की गई है । हमारे लिए यह समझना बहुत कठिन प्रतीत होता है कि राज्य सरकार के विरुद्ध किए गए पिटीशनों में जिसमें यह शिकायत की गई

---

[1] [1972] 1 उम० नि० प० नि० मा० 99=[1972] 2 एस० सी० आर० 646.

[2] ए० आई० आर० 1927 अवध 323.

[3] ए० आई० आर० 1952 नागपुर 271.

[4] ए० आई० आर० 1967 कलकत्ता 191.

है कि राज्य सरकार के पुलिस अधिकारियों ने पिटीशनरों को गिरफ्तारी के समय अथवा पुलिस अभिरक्षा के दौरान अन्धा बना दिया था, राज्य सरकार इस शिकायत की सत्यता या असत्यता से सम्बन्धित रिपोर्ट को जो राज्य सरकार के निर्देश से पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा तैयार की गई है, प्रस्तुत करने से कैसे इनकार कर सकती है। हमारा यह स्पष्ट मत है कि श्री एल० वी० सिंह और उनके सहयोगियों द्वारा किए गए अन्वेषण के परिणाम-स्वरूप तैयार की गई रिपोर्टें धारा 35 के अधीन सुसंगत है और वर्तमान रिट पिटीशन के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा उन्हें प्रस्तुत किया जाना चाहिए और वे साक्ष्य के लिए उपयोग की जा सकती हैं। वस्तुतः इन रिपोर्टों में अन्तर्विष्ट कथनों को साक्ष्य में कितना महत्व दिया जाए यह ऐसा मामला है जिसका विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा इन रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् ही किया जा सकता है। हो सकता है कि अन्ततः यह पता चले कि इन रिपोर्टों का साक्ष्य से सम्बन्धित कोई विशेष महत्व नहीं है और यह भी हो सकता है कि इनमें राज्य सरकार के विरुद्ध कोई कथन भी अन्तर्विष्ट हो ऐसी दशा में यह भी सम्भव है कि राज्य सरकार उनकी सत्यता पर आपत्ति करे या उसका स्पष्टीकरण दे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये रिपोर्टें सुसंगत नहीं हैं। इसलिए राज्य सरकार को ये रिपोर्टें प्रस्तुत करनी चाहिएं और वर्तमान रिट पिटीशन में उन्हें अभिलेख पर लाया जाना चाहिए। हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि यद्यपि 16 फरवरी, 1981 वाले अपने आदेश में हमने इन रिपोर्टों का निर्देश करते हुए यह कहा है कि वे श्री एल० वी० सिंह और उनके सहयोगियों द्वारा 10 जनवरी और 20 जनवरी, 1981 के बीच तैयार की गई हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि 20 जनवरी, 1981 वाली अन्तिम तारीख का उल्लेख करते समय हमसे कुछ भूल हो गई है चूंकि हमें यह पता चला है कि इनमें से कुछ रिपोर्टें श्री एल० वी० सिंह द्वारा 20 जनवरी, 1981 के पश्चात् भी प्रस्तुत की गई हैं और इनमें से अन्तिम रिपोर्ट तो 27 जनवरी, 1981 को प्रस्तुत की गई है। इसलिए ये सभी रिपोर्टें जिसके अन्तर्गत 9 दिसम्बर, 1980 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट भी सम्मिलित है, राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत की जानी चाहिएं और इस न्यायालय को पक्षकारों के बीच विवादगत प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए उसे दस्तावेज का एक भाग मानकर विचार किया जाना चाहिए।

10. जो कुछ हमने ऊपर कहा है, वे ही बातें 16 फरवरी, 1981 को हमारे द्वारा किए गए आदेश की मद 3 और 4 में निर्दिष्ट पत्र-व्यवहार और टिप्पणों के सम्बन्ध में भी लागू होंगी। इन टिप्पणों और पत्र-व्यवहारों

से इस बात पर प्रकाश पड़ सकेगा कि अन्धा बनाए जाने वाली घटना के सम्बन्ध में अपने कार्य अथवा कार्य लोप द्वारा राज्य सरकार किस सीमा तक सम्बद्ध है और ये रिपोर्टें जो श्री० एल० वी० सिंह और श्री एम० के० झा द्वारा अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में तैयार की गई हैं, स्पष्टत: धारा 35 के अधीन सुसंगत हैं और इसलिए इस रिट पिटीशन में उन्हें प्रस्तुत किया जाना चाहिए और अभिलेख पर लाया जाना चाहिए और इसी प्रकार तथा इन्हीं आधारों पर गुप्तचर विभाग के निरीक्षक और उप-निरीक्षक द्वारा गजेन्द्र नारायण, उप-महानिरीक्षक, भागलपुर और 18 जुलाई को प्रस्तुत की गई रिपोर्टों और उनके द्वारा श्री के० डी० सिंह, पुलिस अधीक्षक, गुप्तचर विभाग, पटना को लिखा गया पत्र जिस पर श्री एम० के० झा द्वारा हस्त-लिखित पृष्ठांकन किया गया है, भी धारा 35 के अधीन सुसंगत अवधारित किए जाते हैं और राज्य सरकार द्वारा उन्हें प्रस्तुत किया जाना चाहिए और इस रिट पिटीशन का भाग मान कर उन्हें अभिलेख पर लाया जाना चाहिए।

11. क्योंकि दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम की धारा 6 के अधीन राज्य सरकार के अनुमोदन के अनुसार आरम्भ की गई अन्वेषण की कार्यवाही के सम्बन्ध में इन समस्त दस्तावेजों की आवश्यकता केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को है, अत: हम यह निदेश देते हैं कि इन दस्तावेजों की फोटोस्टेट प्रतियों के पांच सैट, एक पिटीशनरों की विद्वान अधिवक्ता श्रीमती हिंगोरानी के लिए, एक राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री के० जी० भगत के लिए, एक श्री चितले के लिए जो हमारे निवेदन पर न्यायमित्र के रूप में उपस्थित हुए हैं और दो सैट न्यायालय के लिए तैयार किए जाएं और फोटोस्टेट प्रतियां लेने के पश्चात् इन दस्तावेजों को उन अन्य दस्तावेजों के साथ जो राज्य सरकार द्वारा न्यायालय को सौंपे गए हैं, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री के० जी० भगत को तत्काल वापस कर दिए जाएंगे जो कि उसे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को अपना अन्वेषण कार्य करने के लिए तत्काल उपलब्ध करा देंगे जिससे कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा किए जाने वाले अन्वेषण कार्य में कोई रुकावट या विलम्ब न हो। हम आशा और विश्वास करते हैं कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो अपना अन्वेषण कार्य यथा-सम्भव शीघ्र पूरा कर लेगा।

आदेश तदनुसार किया गया।

द्वि०/श्री०